समाज विकासमाला

मन के जीते जीत

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : ८०

मन के जीते जीत है

संयम की सीख देनेवाली पोथी

लेखक
विष्णु प्रभाकर

संपादक
यशपाल जैन

१९५७
सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रखा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में किसी सुधार की गुंजाइश मालूम हो, तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

—मंत्री

पाठकों से

आज दुनिया में ज्यादातर आदमी परेशान दीखते हैं। जानते हैं क्यों? इसके कई कारण हैं; लेकिन एक बहुत बड़ा कारण यह है कि लोगों का मन पर काबू नहीं है, जरा-सी बात हुई कि झट उबल पड़े, तनिक कठिनाई आई कि आपे से बाहर हो गये। इससे काम का बनना तो दूर, उल्टे बिगड़ जाता है। लेकिन इससे भी अधिक नुकसान यह होता है कि आदमी के दिमाग और दिल में अशांति पैदा हो जाती है।

सुख और शांति से रहने के लिए मन पर काबू रखना बड़ा जरूरी है और मन पर काबू हम तब रख सकते हैं, जबकि हम धीरज रखें और दूसरे की बात और परेशानी को भी समझने की कोशिश करें।

यह किताब बड़े काम की है। इसमें बताया गया है कि असली जीत मन की जीत है। आप इसे पढ़ें और दूसरों को भी पढ़वायें।

—संपादक

मन के जीते जीत है

एक बार ऐसा हुआ कि दादा के पास एक युवक आया। उनके पास बहुत-से लोग आते थे। अपने दुख-दर्द की बातें करते थे। उनसे सुझाव और सलाह लेते थे। यह युवक भी इसीलिए आया था। बहुत दुखी था। आंखों में तेज नहीं, चेहरे पर चमक नहीं। बदन में कसाव नहीं। बस ढीला-ढीला-सा एक ओर आकर बैठ गया। दादा ने उसे देखा तो एकदम समझ गए। कुछ नहीं बोले। लेकिन जब सब लोग चले गए तो उसकी ओर देखकर कहा, "मालूम होता है कि तुम्हारे मन में बहुत पीड़ा है।" इतना कहना था कि वह युवक एकदम बिखर गया। बोला, "मैं बहुत दुखी हूं, दादा। मुझे कुछ नहीं सूझता। चारों ओर से निराशा खाने को दौड़ रही है। जिस काम में हाथ डालता हूं उसीमें हार होती है। मेरे घरवाले मेरी बात नहीं सुनते। पड़ोसी मुझसे नफरत करते हैं। मेरे भीतर आग धधक रही है। आखिर यह सब क्या है?"

दादा बोले—इस तरह घबराओ नहीं। तुम अकेले नहीं हो। यह सारी दुनिया इसी तरह परेशान है। उसी रोग की शिकार है, जिसके तुम हो। यह

बड़ा अजीब रोग है। इसके बहुत-से रूप हैं। यह बाहर-भीतर सब तरफ से हमला करता है। सुनो, मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूं––

पुराने जमाने की बात है, एक वन में दो भाई रहते थे। एक दूसरे से काफी दूर उनके तपोवन थे। दोनों अपने-अपने तपोवनों में तप करते थे। बड़े भाई का नाम था शंख, छोटे भाई का लिखित। एक बार लिखित बड़े भाई से मिलने के लिए उनके तपोवन में गये। शंख वहां नहीं थे। वह वहां बैठकर उनके आने की राह देखने लगे। बहुत देर हो गई। खाने का समय आकर भी चला गया, लेकिन वह नहीं आये। लिखित मुनि ने अपने मन को बहुत रोका लेकिन आखिर उनको भूख लग आई। तपोवन में फलों के बहुत-से पेड़ थे। वह उठे, कुछ फल तोड़कर खाने लगे। तभी आ गये बड़े भाई। एकदम बोले, "तुमने मुझसे बिना पूछे फल तोड़े हैं। यह चोरी है। जाओ, राजा के पास जाओ और अपने कसूर की सजा मांगो।"

लिखित मुनि ने अपनी भूल मान ली और वह राजा के पास पहुंचे। उनके आने की खबर पाकर राजा ने बड़े आदर से उनको सभा में बुलवाया और पूछा, "मुनिवर, आपका तप तो बिना किसी बाधा के चल रहा है न ? आपको कोई दुख तो नहीं है ?"

लिखित––राजन, तुम्हारे राज में किसको दुख हो

सकता है। पर मेरे आज आने का एक और ही कारण है।

राजा--कहिए मुनिवर, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?

लिखित--मुझे सेवा नहीं, दंड चाहिए। मैंने अपराध किया है।

राजा--आपने अपराध किया है ?

लिखित--हां राजन्, मैं मुनिवर शंख के तपोवन में उनसे मिलने गया था। वह वहांपर नहीं थे। बहुत देर तक उनकी राह देखने के बाद मुझे भूख लग आई। मैंने कुछ फल तोड़कर खा लिये। मैं यह भूल ही गया कि ऐसा करने से पहले मुझे उनसे पूछ लेना चाहिए था। बिना पूछे किसीकी चीज लेना चोरी है। मैं चोरी करने का अपराधी हूं। (सभा में सब ठगे से उनकी ओर देखने लगते हैं।)

राजा--मुनिवर आप सच कहते हैं, यह चोरी है और चोरी अपराध है। आपने अपराध किया है। पर दंड के लिए अपराध करना ही काफी नहीं है। अपराध क्यों किया गया है, यह भी देखना होता है। क्यों मंत्रीजी, ठीक है न ?

मंत्री--हां महाराज, आप ठीक कहते हैं। मुनिवर ने फल इसलिए तोड़े थे कि वह भूखे थे।

लिखित--राजन्, मैं इन बारीकियों में नहीं जाना

चाहता। सीधी-सी बात है, किसी भी कारण से क्यों न हो, मैंने अपराध किया। मैं अपराध का दंड चाहता हूं।

राजा—आपके अपराध पर ही हम विचार कर रहे हैं। हमें दंड देने का अधिकार है तो क्षमा करने का अधिकार भी है। आपने जो अपराध किया है, वह ऐसा है कि आपको क्षमा किया जा सकता है। मैं आपको क्षमा करता हूं। (सब खुश होते हैं)

मंत्री—महाराज, आपने ठीक किया है। आपको ऐसा ही करना चाहिए था। मुनिवर को अपने अपराध का कितना दुःख है? क्या यह सजा बहुत नहीं है?

लिखित—नहीं है।

मंत्री—मुनिवर, राजा ने जो फैसला किया है, उसको चुनौती नहीं दी जा सकती।

लिखित—चुनौती की बात मैं नहीं जानता। मैं तो यह जानता हूं कि चोरी के अपराध में अपराधी के हाथ काट लिये जाते हैं, क्षमा नहीं की जाती।

राजा—मुनिवर...।

लिखित—नहीं राजा, क्षमा करना बहुत बड़ा और कड़ा दंड है। मैं वह दंड चाहता हूं, जो साधारण अपराधी को दिया जाता है। मैं मुनि हूं। मैंने राज्य का नियम ही नहीं तोड़ा है, मैंने मन के आचरण का नियम भी तोड़ा है। जो मन के वश में हो जाता

है, वह अपराधी ही नहीं, पापी भी है।

राजा--मुनिवर...मुनिवर, आप ठीक कहते हैं। आपको वही दंड मिलेगा जो किसी और को मिल सकता है।

मंत्री--लेकिन, राजन्...

राजा--मैं बेबस हूं, मंत्री। अपराधियों की जातियां अलग-अलग नहीं होतीं। न्याय के सामने सब बराबर हैं। मुझे खुशी है कि मेरे राज्य में ऐसे अपराधी रहते हैं। पर इसी कारण मैं न्याय के रास्ते से डिगूंगा नहीं। मैं आज्ञा देता हूं कि चोरी के अपराध में लिखित मुनि के हाथ काट लिये जायं।

× × ×

दादा--देखा बेटा! लिखित मुनि मन के वश में न हो जाते तो फल न तोड़ते। मैं इसी रोग की बात कहना चाहता था। 'अनुशासन' इसीको कहते हैं। आज सारी दुनिया में इसी 'अनुशासन' की कमी है। तुम भी इसीके शिकार हो। मन के दास हो, मालिक नहीं। एक मित्र थे। पहले वह भी इसी तरह मन के दास थे। बहुत दुखी रहते थे। किसी सरकारी विभाग में काम करते थे। एक बार अपने अफसर को इसलिए घर पर बुला लाये कि वे उनसे खुश हों और उनका पद बढ़ा दें। जब वह घर पहुंचे तो वहां हालत ही कुछ और थी—

माधव—आइए, पधारिए। मैं अभी आता हूं। भोजन शायद तैयार ही होगा। (एकदम) अरे यह क्या ? ओह, मेज का क्या हाल बना दिया है। मेज-पोश पर स्याही गिरा दी। मैं तो परेशान होगया। केशव, ओ केशव ! (केशव आकर)

केशव—हां, भाईसाहब !

माधव—यह मेज किसने खराब की है और छोटी मेज कहां है ? यहां से फूलदान कहां गया ?

केशव—भाईसाहब, मुझे कुछ पता नहीं, मैं तो खेलने जा रहा हूं।

माधव—अरे भाई, एक दिन नहीं जाओगे तो क्या आसमान टूट पड़ेगा।

केशव—भाईसाहब, आज बहुत मजेदार खेल है। मैं चला।

माधव—मजेदार खेल है ! बहानेबाज ! (पुकार-कर) कमला, ओ कमला, फूलदान कहां है और... (रोने की आवाज आती है) यह कौन रोता है। अरे भई, क्यों रोता है। जब देखो तब रोना। कभी तुम लोगों को समझ भी आयगी कि नहीं !

मालती—आयगी इनको समझ, ऐसी घड़ी पैदा भी हुए हैं ! हरदम झिकाते रहते हैं। नाक में दम आ गया मेरा। मौत भी नहीं आती इन्हें !

माधव—अरे, जरा चुप भी रहो। बैठक में वो

बैठे हैं।

मालती--बैठे होंगे। मैं कहती हूं, इन सबको ले जाया करो, नहीं तो मुझसे काम नहीं होगा। कहला भेजा चपरासी से कि साहब खाना खाने आयंगे।

माधव--मैं कहता हूं बंद करो यह टैं-टैं। खाना बनाया है या नहीं ?

मालती--खाना बनाती या इनको रखती !

माधव--तो अभी खाना नहीं बना। हे भगवान्, कितनी देर है।

मालती--अभी तो साग चढ़ाया है।

माधव--अभी साग चढ़ाया है तो क्या होगा! तुम कभी समय पर काम नहीं करतीं। ऐसी बात थी तो किशन को रोक लिया होता ! कमला कहां चली गई ?

मालती--किसे रोक लेती ! कौन सुनता है मेरी ! न जाने किस खेत की मूली हूं। लाख सिर पटका पर वह शौकीन तो खेलने चला गया।

माधव--उसका दिमाग बिगड़ गया है ! पर कमला कहां है ?

मालती--जाती कहां, पड़ी रो रही है। लाड़ो रानी सबेरे मेरी डिबिया में से पैसे चुरा कर ले गई !

माधव--कितने पैसे चुरा लिये ? क्या डाका डाल दिया ?

मालती--चार आने ले गई। आज चार आने की चोरी की है तो कल डाका भी डालेगी।

माधव--तुमने देखा था उसे ले जाते ?

मालती--लो सुनो, इसकी बातें ! मैं देखती तो ले जाने ही क्यों देती ?

माधव--(चीखकर) कमला, कहां है कमला ? इधर आ। (झपटकर अंदर जाते हैं और कमला को घसीटकर लाते हैं, मारते हैं) मैं कहता हूं, तुमने



चोरी की है ? बोलो। बोलती क्यों नहीं ? बोलो। (कमला रोती है) मैं कहता हूं रो मत। बता तूने पैसे उठाए थे ? (मारता है, कमला चीखती है) नहीं सुनती। ऊपर देख। तुमने चोरी की है ? नहीं बोलती। (जोर

से लात मारता है) चल, हट दूर हो जा मेरी आंखों से, नहीं तो खून पी जाऊंगा । जीना दूभर कर दिया । इस जीने से मौत भली ।

× × ×

दादा--बेटी को मारते समय समझ रहे थे कि बेटी के दोष सुधार रहें हैं । लेकिन असली बात जो थी वह सब जानते हैं । वह तब आप ही दोषी थे, मन के दास थे । उनको अपने पर ही कोई अधिकार नहीं था । जिसको अपने ऊपर कोई अधिकार नहीं, वह दूसरे को क्या सुधारेगा ! यह आदमी के पतन का सबसे बड़ा कारण है । गीता में यही बात तो कही है । तुमने तो पढ़ा होगा कि यह सब मोह के कारण होता है । मोह आदमी की सुधबुध को खो देता है और जब सुध-बुध खो गई तो समझ, अक्ल, बुद्धि यह सब भी खो जाते हैं और इनके खो जाने पर नाश-ही-नाश है ।

मेरे पड़ौस में दो परिवार रहा करते थे । एक अध्यापक था, दूसरा दूकानदार । दोनों घरों की स्त्रियां हमेशा लड़ा करतीं थीं । पहले तो पुरुष अलग रहे, पर फिर जैसा कि सदा होता है, वे भी मैदान में उतर आये--

सरला--मैं कहती हूं धरमू की मां, तुमने आखिर क्या सोच रखा है । हमें निकालकर ही दम लोगी क्या ? भले आदमी को एक बार कह देना काफी है ।

पर तुम तो चिकने घड़े की तरह हो।

रामकली--क्या कहा, मास्टरनी ? हम चिकने घड़ें हैं !

सरला--हां, तुम चिकने घड़े नहीं तो और क्या! तुमसे कितनी बार कहा कि लड़के को नाली पर न बैठाया करो। कूड़े का तो हमेशा हमारे घर के आगे ढेर लगा देती हो और न जाने क्या पकाती हो कि नाक हमेशा सड़ती रहती है।

रामकली--जिनके भीतर बदबू भरी रहती है, उनकी नाक सड़ा ही करती है। बड़ी आई सफाई की ठेकेदार ! ऐसा नखरा है तो कोठी में रही होती ! शक्ल चुड़ैलों की, मिजाज परियों का !

सरला--देखो धरमू की मां, शकल-वकल की बात मत करो।

रामकली--क्यों नहीं करूं, तुम कौन-सी कसर छोड़ रही हो। घर में एक लड़का है, जब देखो उसीको कोसती रहती हो। नाली पर न बैठाऊं तो चूल्हे पर बैठाऊं ?

सरला--चूल्हे पर बैठाओ, या सिर पर, मुझे इस बात से कोई मतलब नहीं। पर अबकी बार नाली पर देखा तो...

रामकली--तो क्या करोगी ? सूली पर चढ़ा दोगी ?

सरला—हां, चढ़ा दूंगी।

रामकली——तुम सूली पर चढ़ा दोगी। (चिल्लाकर) मैं कहती हूं, तुम अपने बेटे को सूली पर चढ़ाओ। अपने उसे सूली पर चढ़ाओ। अपनी सात पीढ़ियों को सूली पर चढ़ाओ।

सरला——और तुम अपने मां-बाप, भाई-बहन-मालिक...

(तभी अध्यापक महोदय आते हैं)

कुमार——अरे, यह क्या है ? भई, यह कैसा महाभारत है ? इधर आओ जी। मैं कहता हूं, इधर आओ। यह सब क्या फूहड़पन है ?

सरला——बड़े आये फूहड़पनवाले। आपको क्या मालूम कि मुझपर क्या बीतती है। दिन भर सड़ती हूं। जब देखो मार-पीट, धमाचौकड़ी, गाली-गलौज। आखिर कहां जाऊं ?

कुमार——जाने की कहीं कोई जरूरत नहीं। पहले जरा अपने मन को शांत करो।

सरला——आपकी यही बातें सुनते-सुनते मैं थक गई। यह करो, यह न करो। आखिर इन बातों का मतलब क्या है ?

कुमार——पहले काम किया जाता है। मतलब की बात पीछे सोची जाती है।

सरला——सोची जाती होगी। मैंने तो उसीको सदा पिटते देखा। दुनिया बड़ी चालाक है। इसके

आगे जरा झुके कि गरदन पर सवार हुई । यहां तो सेर को सवा सेर ही ठीक कर सकता है, तुम जैसे पोच नहीं । तुम्हारे कारण मुझे सदा नीचा देखना पड़ता है ।

कुमार––तुम मेरे कारण नीचा देखती हो ! नहीं श्रीमतीजी, नीचा तुम अपने क्रोध के कारण देखती हो। मानता हूं, गलती उनकी भी है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि तुम भी गलती करने लगो ।

सरला––तुम जाकर उनके चरण चूमो ।

कुमार––चरण चूमनेवाले कायर होते हैं । तुमको उनका विरोध करना चाहिए । लेकिन जैसे मैं बताऊं वैसे । (तभी दरवाजे पर खटखटाहट होती है) कौन, साहब हैं ! आ जाइए ।

(लालाजी का नौकर आता है)

नौकर––लालाजी ने यह पत्र दिया है ।

कुमार––लाइए । (खोलता है । पढ़ता है) अच्छा जाइए । कह देना––मैं जवाब भेज दूंगा । (नौकर चला जाता है ।)

सरला––लालाजी ने पत्र लिखा है ?

कुमार––जीहां । सुनिए :

श्रीमान्‌जी,

आप पढ़े-लिखे ही नहीं, दूसरों को पढ़ाते भी हैं । लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि आप दूसरों की ओर

अधिक ध्यान देते हैं, अपने घर की ओर नहीं। आपकी घरवाली ने फूहड़पन की हद करदी है। गाली देना, कोसना, मारने को चढ़ आना यह सब क्या पढ़े-लिखों का काम है? आप यह न समझिए कि हम पोच हैं। अपनी घरवाली को समझा लीजिए, नहीं तो किसी दिन ऐसी बात हो जायगी कि फिर पछताने से भी कुछ हाथ न लगेगा।

आपका,
--रामदास

सरला—हूं! यह बात है! उल्टा चोर कोतवाल को डांटे! अजी, तुम कायर हो। तुम्हारे कारण ही उनकी यह हिम्मत हुई।

कुमार--लीजिए दूध में फिर उफान आ गया। बात तो सुनिए।

सरला--सुनाने को और कुछ बचा है। वह बात है...

कुमार--बात वह नहीं यह है कि तुमको क्रोध आ गया है। पहले इसे थूको। लालाजी मुझे डांटते हैं तो मैं भी उनको गालियां निकालने लगूं!

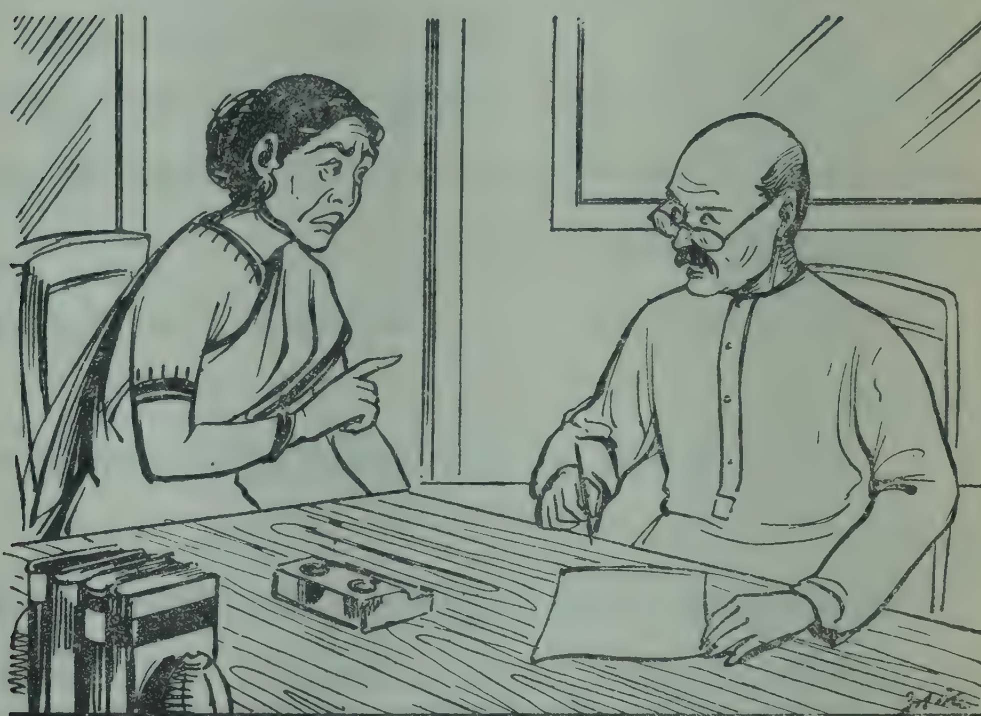
सरला--आप और गालियां निकालें? अजी, मरने को तो मैं बहुत हूं।

कुमार--तुम मरोगी तो मैं भी जीता नहीं रहूंगा। कहो तो लिखकर दे सकता हूं कि तुम्हारे मरने पर

मैं सती हो जाऊंगा । लेकिन छोड़ो यह बात बाद की है । पहले लाला रामदास को ठीक करना चाहिए ।

सरला—तुम ठीक करोगे ! तुम तो यूंही जूते खाते रहोगे और मेरी हँसी उड़वाते रहोगे ।

कुमार—अच्छा तो इसी बात पर जरा मेरा पैड दो । मैं अभी उनको जवाब लिखता हूं । (कुर्सी सरकाकर बैठ जाता है और बोल-बोलकर लिखता है)



श्रीमान लालाजी,

जयहिंद !

आपका पत्र मिला । मुझे खेद है कि मेरे कारण आप लोगों को तकलीफ हुई । हम पड़ौसी हैं । पड़ौसी

के कारण पड़ौसी को तकलीफ हो, यह तो बहुत बुरी बात है। मेरी घरवाली को लड़ना-झगड़ना नहीं चाहिए था। मैं उसे समझा दूंगा। मेहरबानी करके आप किसी बात का ध्यान न कीजिए। कल मैं आपकी दूकान की ओर से गया था। काफी भीड़ लगी हुई थी। सजावट तो ऐसी थी कि न चाहकर भी मैं रुक गया। रुक गया तो आपको खरीदारों से बातें करते हुए सुना। आप जिस प्रकार लोगों से बातचीत करते हैं, वह मुझे बहुत अच्छा लगा। कभी हमारे गरीबखाने पर भी पधारिए न। कल ही आइए और साथ ही भोजन कीजिए। भाभी को प्रणाम। बच्चों को प्यार।

आपका,
--कुमार

सरला--यह है आपका जवाब! आप भी मेरे ही बैरी हैं। मुझे ही दोषी ठहराया।

कुमार—केवल दो दिन, दो दिन और चुप रहिए।

(दो दिन बाद। कुमार बाहर से आता हुआ)

कुमार--अरे भई वाह! क्या ठाठ हैं आपके। भई आपने तो, बस क्या कहूं। आप जैसी घरवाली सब घरवालों को मिले। लालाजी देखेंगे तो बस देखते ही रह जायंगे। (दरवाजे पर खटखटाहट) लो भई, आगए वे लोग। (जोर से) आता हूं, लालाजी। (दरवाजा खोलता है) आइए-आइए, बड़ी मेहरबानी

की आपने।

लालाजी--मेहरबानी क्या है, भाईसाहब। वह तो...

कुमार--बैठिए। 'वह तो' की बातें तो होती ही रहेंगी। बस खाना आने में बहुत देर नहीं है।

लालाजी--भाईसाहब, मैं बहुत शर्मिदा हूं। क्या बताऊं!

कुमार--जीहां, क्या बताऊं! ये लोग...

लालाजी--न जाने कैसे मैंने वह पत्र लिखा। मैं सचमुच पागल हो गया था। मैं माफी मांगने आया हूं।

कुमार--आप कैसी बातें करते हैं, लालाजी। माफी कैसी? मैं तो आपका अहसान मानता हूं कि आपने वह पत्र लिखकर मुझे कुछ कहने का अवसर दिया। भला पड़ौसी होकर हम ऐसे लड़ें तो हमारे पढ़ने-लिखने का लाभ?

लालाजी—यह तो आपका बड़प्पन है जो आप ऐसा कहते हैं, वरना गलती मेरी है। अब ऐसी कोई बात नहीं होगी।

कुमार--जीहां, ऐसी बात क्यों होगी!

लालाजी--मैं आपको एक और तकलीफ देने आया हूं। आप जानते हैं कि बच्चे तो जैसा उनको सिखाया जाता है वैसा ही करते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि आप मेरे बेटे को पढ़ायंगे तो वह सोना बन जायगा।

कुमार--(एकदम) आप तो, लालाजी, कवि बन गए और मुझे बना दिया पारसमणि। वाह भाईसाहब, आपके कहने की देर थी, मैं जरूर उसको पढ़ाया करूंगा और आपके घर आकर पढ़ाया करूंगा। भाभी से भी तो बातें हुआ करेंगी।

लालाजी--(हँसकर) अजी, वह बूढ़ा बैल अब क्या पढ़ेगा।

कुमार--भाईसाहब, बछड़ों को तो सब पढ़ा लेते हैं। तारीफ तो तब है जब कोई बूढ़े बैल को पढ़ा सके। और फिर उनको पढ़ाना भी क्या, उनसे सीखने को भी तो बहुत-कुछ मिलता है। पर खैर, भोजन आ गया है, चलिए।

× × ×

दादा—देखा बेटा, अध्यापक का जादू ! बीरबल की वह कहानी याद है ? एक बार धरती पर एक लाइन खींचकर अकबर ने कहा था--बीरबल, बिना इस लाइन को छुए अगर तुम इसे छोटी कर सको तो समझें। बीरबल ने कहा--इसमें क्या बात है ! यह देखिए, यह हुई छोटी। और इतना कहकर उसने इसी लाइन के नीचे एक बड़ी लाइन खींच दी। अकबर उसका लोहा मान गया। यही कुमार ने किया। उसने लालाजी को छोटा नहीं कहा, पर अपनेको इतना बड़ा बना लिया कि वह छोटे पड़ गए। और इसका कारण

तुम जानते हो ? इसका कारण वही एक है कि वह मन के वश में नहीं थे, मन उनके वश में था। इसीको 'विवेक' कहते हैं। आगे चलकर यही 'संकल्प' बन जाता है और संकल्प के सामने दुनिया का कोई भी काम बड़ा नहीं है।

मोहन––दादा, आपकी ये बातें सुनकर तो मेरी आंखों के आगे से परदा हटता जा रहा है। मैं तो अंधेरे में ही भटक रहा था। क्रोध को बहुत बड़ी ताकत समझ रहा था।

दादा––दुनिया के बहुत-से लोग ऐसा ही समझते हैं। लेकिन क्रोध से भी बुरी एक चीज और है। और वह है स्वार्थ। जब आदमी अपनी-ही-अपनी सोचता है, दूसरे की ओर, दूसरे की जरूरतों की ओर देखता ही नहीं तभी सब गड़बड़ होती है। तभी वह मन का दास होता है। तभी अनुशासन मिट जाता है। इसका जो नतीजा होता है वह तुम सबेरे से शाम तक न जाने कितनी बार देखते होगे। रेलवे के टिकटघर पर, बस के अड्डे पर, सिनेमा-घर में, कालेज के लड़कों में, हरकहीं तुम यह नाटक होते देखोगे। अभी कुछ साल पहले ही जब राशन लगा हुआ था तब एक दिन हमारे देखते-देखते मिट्टी के तेल की दूकान जल गई—

(दूकान के आगे बहुत लंबी लाइन लगी हुई है। शोर मच रहा है)

एक आदमी--ओफो भई, अब तेल आया है। यहां तो खड़े-खड़े अपना तेल निकल गया है। पूरे पांच घंटे हो गए।

दूसरा--अजी, मिट्टी का तेल क्या, अमृत बन गया है!

पहला--इससे भी अधिक।

दूसरा--जीहां। देखिए तो ये लोग कैसे बेताब होकर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। (एक-दो आदमी तेजी से आगे जाते हैं और शोर होता है) अरे, अरे, आप पीछे थे, आगे कैसे बढ़ते हैं?

पहला--हां जनाव, आप पीछे लौटिए।

दूसरा--सुनते नहीं, बहरे हो! आप पीछे थे, अपनी जगह जाइए।

पहला--आप तो बड़े ढीठ हैं। शर्म नहीं आती।

चौथा--शर्म की बात अपने घर जाकर करो। मैं आपकी जगह पर नहीं खड़ा हूं।

पहला—मेरी जगह का कोई मतलब नहीं है। आप अपनी जगह से हटे हैं। आपनें नियम तोड़ा है।

चौथा—बड़े आये नियमवाले! आप अपनेको देखिए।

पहला—जीहां, देख रहा हूं। पर आप अपनी जगह पर जाइए।

चौथा—मैं नहीं जाऊंगा।

पहला—कैसे नहीं जायगा !

चौथा—अरे, रहने दे, हाथापाई न कर, नहीं तो...

पहला—नहीं तो मार देगा ? चोरी उसपर सीना-जोरी । चलता है कि लगाऊं...

चौथा—आ...

पहला—आ (हाथापाई करने लगते हैं)

दूसरा—अरे-अरे, तुम क्या करते हो ! तेल बिखर जायगा ।

तीसरा—बिखर नहीं जायगा, वह तो बिखर गया । हाय रे, मेरे कपड़े खराब हो गए !



दूसरा—ओह ! मेरा तो दूध ही बिगड़ गया ।

पहला—मैं क्या करूं, मेरे सारे आटे में तेल भर गया।

तीसरा—देखना भाई, देखना भाई, उधर दियासलाई न फेंकिए। (कई आवाजें) आग लग गई, आग! भागो, भागो!

× × ×

दादा—दूकान जली। आदमी जले। किस कारण? इसी कारण कि हम अनुशासन नहीं रख सके। नियम का पालन नहीं कर सके और यह सब हुआ स्वार्थ के कारण। वे भूल गए कि जैसी उनकी जरूरत है वैसी ही दूसरों की भी। आकाश को देखते हो। ये सूरज, चांद, तारे सब एक नियम में बंधे हुए चलते हैं। समय पर दिन निकलता है, सूरज चमकता है। समय पर रात होती है, चांद निकलता है, तारे निकलते हैं। कितना अच्छा लगता है! आप सोचें, अगर सूरज एक दिन एक पल के लिए जरा नीचे उतर आये तो क्या हो!

मोहन—तब तो दादा, तमाम दुनिया जलकर राख हो जायगी।

दादा—तो बस इसी तरह हमारा शरीर है, हमारा समाज है। शरीर में जरा-सी गड़बड़ हो तो आदमी बीमार हो जाता है। मौत तक आ जाती है। इसी तरह समाज में भी जब हम नियम या अनुशासन का

ध्यान नहीं रखते तो ऐसी ही गड़बड़ हो जाती है।

मोहन—हां दादा, बात कुछ-कुछ समझ में आ रही है।

दादा—अभी और समझने की जरूरत है। गांधीजी यह कहते-कहते चले गए कि सिवाय संयम के के यानी सिवाय अपने मन के जीतने के मेरे, आपके या किसी दूसरे के पास सुखी होने का कोई और रास्ता नहीं है। एक बार उन्होंने कहा था, "जब भाप अपने आपको एक मजबूत लेकिन छोटे बर्तन में कैद कर लेती है तब वह बड़ी ताकत बन जाती है। बाद में एक नपे-तुले छोटे-से रास्ते से निकलकर इतनी तेज गति पैदा करती है कि उससे बड़े-बड़े जहाज और भारी वजन-दार मालगाड़ियां चलाई जा सकती हैं।

मोहन—ये बातें सुनकर तो, दादा, मुझे लगता है कि मेरे भीतर भी ताकत भरती जा रही है।

दादा—ताकत तो भरी हुई है। बात बस समझने की है। मन के जीतने को मैंने मन का अनुशासन कहा है। 'अनुशासन' शब्द कुछ कठिन लगता है, लेकिन अगर तुम सेना का काम देखो तो तुम एकदम समझ जाओगे और फिर इस शब्द को कभी नहीं भूलोगे। नियम का पालन वहां जीवन की शर्त है। सैनिक लोग जरा-सी मनमानी करें तो सारा देश संकट में पड़ जाय।

मोहन—ठीक है दादा, मैं समझ गया। लेकिन

एक बात बताइए, हममें मन की इतनी दासता क्यों है ?

दादा—क्योंकि हम खेलते नहीं।

मोहन—खेलते नहीं ! मैं समझा नहीं। क्या खेलने से आदमी अपने मन का दास नहीं रहता।

दादा—हां बेटा, मन को अपना दास बनाने के लिए यानी अनुशासन पैदा करने के लिए आदमी में जो तेजी पैदा होती है उसे शांत करने के लिए आनंद बहुत जरूरी है। और तुम जानते हो, आनंद खेल में ही मिलता है। जीत हो या हार, खिलाड़ी सदा एक-रस रहता है। हार होने पर वह दुखी नहीं होता, बल्कि सबसे आगे बढ़कर अपने विरोधी को बधाई देता है। वह खेलता है, जीत और हार की चिंता नहीं करता। तभी तो कहा करते हैं—जो काम करना हो उसे उसी तरह करो जिस तरह खेलते हैं। गीता का यही उपदेश है। काम करो, काम के परिणाम की चिंता न करो। 'निष्काम कर्म' इसीको कहते हैं। तुम कभी हस्पताल तो गए ही होगे ?

मोहन—हां दादा, कई बार जाना पड़ा है।

दादा—वहां तुमने नर्सों को देखा होगा। वे रोगी के लिए क्या नहीं करतीं ! मां अपने बच्चे के लिए जान दे देती है। लेकिन यह उसका सुभाव बन गया है। सुभाव के कारण जानवर भी बड़े-बड़े काम कर देते हैं। लेकिन नर्स का काम सुभाव के कारण नहीं होता।

उसे यह ताकत अनुशासन से, अपनेको जीतने से मिलती है। एक नहीं अनेक रोगियों का क्रोध, अपमान, गालियां सहकर भी वह हमेशा धूप-सी खिली रहती है और सेवा करती रहती है--

एक आवाज—सिस्टर, जल्दी आओ। रोगी नंबर ५ किसीकी नहीं सुनता।

नर्स--अभी आती हूं। अभी सब ठीक हो जाता है। (आकर) जीहां, क्या बात है ?

आवाज--यह रोगी दवा नहीं पीता।

रोगी--मैं दवा नहीं पीऊंगा। चलो, जाओ तुम सब लोग। जाओ।

सिस्टर--आप दवा नहीं पीते, न पीजिए, लेकिन शोर तो न मचाइए।

रोगी--मैं कहता हूं तुम चली जाओ। जाओ।

सिस्टर--मैं चली जाऊं, लेकिन आप लेट जाइए। हां-हां, लेट जाइए। लाइए, जाने से पहले आपकी छाती सहला दूं। आपका दर्द तो अब कम है ?

रोगी--दर्द तो कम है, पर...

सिस्टर—मैं देख रही हूं, सांस अभी तक बुरी तरह फूलता है। कोई डर नहीं, वह भी ठीक हो जायगा। नहीं-नहीं, उठिए नहीं, लेटे रहिए। अभी और सहला लेने दीजिए। देखिए आपको सांस लेने में आराम हो रहा है न। अगर आप एक चम्मच दवा पी लें तो

आपको और भी आराम मिलेगा। हां बस, एक चम्मच। मुंह खोलिए। शाबाश ! बस, अब आप बहुत जल्दी-ही घर जानेवाले हैं। बहुत जल्दी।

दूसरी आवाज--सिस्टर, इधर इन बहूजी ने बिस्तर खराब कर दिया।

बहूजी--मैं क्या करूं ! मैंने तो पाट मांगा था, पर मांगते-मांगते...

सिस्टर--कोई डर नहीं, आप बीमार हैं। मैं अभी ठीक किये देती हूं।

एक रोगी--(चिल्लाकर) सिस्टर, सिस्टर !

सिस्टर--अभी आई। कहिए।

रोगी--तुम मेरा कुछ ध्यान नहीं करतीं। मेरे पास एकदम नहीं आतीं।

सिस्टर--लीजिए, अब आ गई। आपकी तबीयत तो ठीक है।

रोगी--वह तो आपकी मेहरबानी है, पर देखिए, मैं यह खाना नहीं खा सकता। मुझे हलवा चाहिए।

सिस्टर--आपको हलवा मिलेगा।

रोगी--सच, कब ?

सिस्टर--जब आपका पेट मांगेगा। अभी तो आप मांग रहे हैं। लेकिन यह चादर ओढ़ लो। देखो, कैसी ठंडी हवा चल रही है। आपके फेफड़े भी बहुत कमजोर हैं।

दूसरी आवाज--सिस्टर, सिस्टर !

सिस्टर—कौन है ?

दूसरी आवाज--कर्नल।

सिस्टर--उनको क्या हुआ ?

वही आवाज--आइए तो, वह किसीका कहना नहीं मानते। पट्टी नहीं बंधवाते। बैठे हैं।

सिस्टर--मैं आती हूं। (चलती है। तेज आवाज पास आती है)

कर्नल—तुमने मुझे समझा क्या है ?

सिस्टर--यही कि आप रोगी हैं। लेट जाओ। मेहरबानी करके लेट जाओ।

कर्नल--चली जाओ यहां से। तुम मुझपर हुक्म चलानेवाली कौन हो ?

सिस्टर--कर्नल साहब, चुप हो जाइए। यहां शोर नहीं मचाया जाता। लेट जाइए।

कर्नल--तुम मुझपर हुक्म चलाती हो। जानती हो, मैं कौन हूं ?

सिस्टर--एक रोगी।

कर्नल--नहीं, मैं रोगी नहीं हूं। मैं कर्नल हूं। पांचवीं राइफल रेजीमेंट का कमांडर।

सिस्टर--कर्नलसाहब, यहांपर केवल एक कमांडर है और वह मैं हूं। मेरी यह आज्ञा है कि आप लेट जाइए और पट्टी बंधवा लीजिए। आप तो जानते

ही हैं कि कमांडर की आज्ञा मानी जाती है।

कर्नल——हां।

सिस्टर——तो लेट जाइए। ठीक, ऐसे ही। बहुत



खूब ! बहुत अच्छे ! बहुत प्यारे !

× × ×

दादा——देखा बेटा, इस छलछलाती धारा को जो एक साथ प्यार और अधिकार से भरी हुई थी। इसे कहते हैं संयम। यही है अनुशासन। और यही है मन को जीतना। अपनेंको मिटाकर ही दूसरे को पाया जाता है। तुम भी इसी तरह अपनेको संभालो। तभी सुख और शांति पा सकोगे। तुम्हारा परिवार, पड़ोसी, समाज सब सुखी होंगे। समाज का आधार है आदमी

और आदमी का बल है अनुशासन। संयम, नियम-पालन, मन को जीतना, दूसरों को समझना, दूसरे के सुख-दुख को अपना समझना सब एक दूसरे से बंधे हैं। हमारे राष्ट्रकवि ने कितनी अच्छी बात कही है--

क्या स्वराज्य, क्या स्वर्ग तुम्हीं सब पाने के अधिकारी।
किंतु उसे रख भोग सको तुम, तब है बात तुम्हारी।
आपस के बंधन ही में तो सबका है छुटकारा।
विलग हुआ तो भूला, भटका, थका और हारा।
जहां अनेक एक रहते हैं, एक अनेक वहां हैं।
सबका सुख जब हुआ हमारा, फिर निज दुःख कहां है।

मोहन--सच दादा, आपने आज मेरे मन का मैल दूर कर दिया। मैं अशांति के सागर में डूबा जा रहा था। आपने मुझे नौका दिला दी। अब तो बाबा तुलसीदास की एक चौपाई मुझे याद आ रही है :

नाथ सुनें मम गत संदेहा।
भयेहु ज्ञान उपजेउ नवनेहा।।

आपकी बातें सुनकर मेरे सारे संदेह दूर हो गए हैं। मैं ज्ञानी हो गया।

समाज विकास - माला की पुस्तकें

१. बदरीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. निषाद और शबरी
११. गांव सुखी, हम सुखी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तंदुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी - मानस - मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७, राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिल-जुलकर काम करो
५७. कालापानी
५८. पावंभर आटा
५९. सवेरे की रोशनी
६०. भगवान के प्यारे
६१. हारूं-अल-रशीद
६२. तीर्थंकर महावीर
६३. हमारे पड़ोसी
६४. आकाश की बातें
६५. सच्चा तीरथ
६६. हाजिर जवाबी
६७. सिंहासन-बत्तीसी भाग १
६८. सिंहासन-बत्तीसी भाग २
६९. नेहरूजी का विद्यार्थी - जीवन
७०. मूरखराज
७१. नाना फड़नवीस
७२. गुरु नानक

मूल्य प्रत्येक का छः आना

सस्ता साहित्य मण्डल

छः आना